सच्चाई

समर्पण

1. ऐ आधार! (जो कुछ देखा, समझा या सोचा जा सकता है, उस सर्वस्व की सत्ता के मूल) इस खेल में मेरा एक अस्तित्व बना और मैंने इस खेल में अपना निर्धारित कार्य प्रारम्भ किया जो मुझे विवश होकर करना पड़ता है.

2. ऐ मेरे आधार! मैंने इस जीवन में तेरी खोज की और अपने विश्वास के अनुसार तुझे दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के रूप में पाकर तुझ से मिला. तूने मुझे आज्ञा दी कि विशेष साधन और अभ्यास करते हुए अपने आपसे अपने आपको जानो. मैंने इस आज्ञा का पालन किया. जो कुछ अनुभव मैंने प्राप्त किया है उसको मैंने किसी अंश तक अपने जैसे दीवानों, ईश्वर-भक्तों, गुरु भक्तों और नामधारियों के पथ-प्रदर्शन तथा दूसरों के लिए वर्णन कर दिया है.

   वास्तव में सत्संग कराने की तेरी आज्ञा का पालन किया जा रहा है. मैं तेरे शब्दों को सार्वभौम सत्य मानता हूँ कि

3. हे फकीर! सत्संग का क्रम अवश्य चालू रखो. मत सोचो या समझो कि तुम दूसरों की सहायता करोगे किन्तु यह विश्वास रखो कि मेरे पास आने का जो तुम्हारा उद्देश्य है इसकी पूर्ति करते हुए सत्संगियों के रूप में सत्गुरु तुम्हें प्राप्त होगा.

4. ऐ कृपालु सत्गुरु! मैं अपना सिर ही नहीं नवाता किन्तु पूर्णतया तेरी शरणागत होता हूँ कि तेरी दया और आशीर्वाद की वर्षा मुझ पर हुई, जिसने मुझे इन संशय और भ्रमों से मुक्त कर दिया जो निजी अज्ञानता के कारण प्रत्येक व्यक्ति के भाग्य में हैं.

5. हे दयालु, सत्ज्ञान के सूर्य! कृपा करके प्रगट होकर अपने निज ज्ञान के प्रकाश को विभिन्न ढंगों से फैला दे कि वर्तमान मानवीय बेचैनी का अंत किया जा सके जो केवल प्रकृति के नियमों की अधूरी जानकारी और अज्ञानता के कारण हैं.

- फ़कीर

बंगलौर (बेंगलूरू)

दिनांक 14-06-1948

भूमिका

यह पुस्तक सर्वप्रथम परम संत दयाल फकीरचंद जी महाराज ने सन् 1948 ई. में अंग्रेजी भाषा में लिखी थी. इसके पश्चात् इसका अनुवाद उर्दू में सन 1955 में प्रकाशित हुआ.

चूँकि पुस्तक बड़े महत्व की है. अतः हिन्दी भाषा में भी इसका प्रकाशित करना आवश्यक समझा गया और महाराज जी की आज्ञानुसार इसका हिन्दी अनुवाद आपके सामने प्रस्तुत है.

पुस्तक है तो छोटी सी मगर इसमें जीवन को अध्यात्म के साँचे में ढालने तथा सुख-शान्ति से व्यतीत करने के सिद्धान्तों की रूपरेखा दी गई है. सिद्धान्त यद्यपि नये नहीं हैं किन्तु उसकी वर्णन शैली विज्ञान के आधार पर की गई है ताकि इनको ढकोसला मानने वाले लोग भी इन नियमों को समझने और मानने लग जाएँ. गणित या विज्ञान का एक विद्यार्थी जब उसके सिद्धान्तों को भली प्रकार समझ लेता है तथा हृदयांकित कर लेता है, तब उसके कठिन प्रश्नों को सरलता से हल कर लेता है. जब तक वह उनको हृदयांकित नहीं कर लेता, भटकता रहता है. यही नियम 'नाम' की प्राप्ति के विषय में लागू है. जब तक प्रारम्भिक नियमों को समझा नहीं जाता और उन पर चला नहीं जाता 'नाम' की प्राप्ति असम्भव है.

प्रथम प्रकरण में 'नाम' की व्याख्या की गई है कि नाम क्या है और इसकी प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य और लघु या सूक्ष्म आहार को और नियमों के अतिरिक्त सबसे अधिक मुख्यता दी गई है. इसी प्रकार मानसिक शान्ति की प्राप्ति के लिए कामोत्तेजक विचारों तथा व्यर्थ बातों पर मनन करने के त्याग करने पर जोर दिया गया है. इसके अतिरिक्त आत्मज्ञान के साधक को प्रारम्भ में किन-किन बातों पर चलना या अमल करना परमावश्यक है उनका वर्णन है. जब तक साधक इन बातों या नियमों पर न चलेगा, आत्मानुभव असम्भव है.

यह पुस्तक है तो छोटी सी मगर है बड़ी अमूल्य. यदि प्रेमी पाठकों ने इन नियमों को ध्यानपूर्वक पढ़ा, सोचा-विचारा और इन पर अमल किया तो वे अवश्यमेव सुख शान्ति के भागी होंगे और शीघ्र ही आत्मज्ञान के अधिकारी बन जायेंगेय आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे.

सम्पादक

प्रथम प्रकरण

नाम

1. लेखक बचपन से ही शाश्वत शान्ति की प्राप्ति और ईश्वर या सच्चाई के जानने का जिज्ञासू था, अतएव दैव योग या मौज से उसका संतों से सम्पर्क हो गया.

2. परम संत महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज से भी लेखक को यही ख्याल मिला, जिन्होंने अपार दया करके इस पतित प्राणी को शरण दी.

3. हिन्दुओं के कुछ महापुरुषों की संगत से यह विशेष ख्याल उसके (लेखक के) हृदयांकित हो गया कि मनुष्य की समस्त आन्तरिक व बाहरी आपत्ति-विपत्ति और चिन्ताओं के दूर करने का एक मात्र उपाय 'नाम' है. यदि इसकी प्राप्ति हो जाय तो मनुष्य अपने जीवन के उच्च उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है.

4. 'नाम' और असली शान्ति की प्राप्ति में सारा जीवन व्यतीत करके लेखक कुछ विशेष परिणामों पर पहुँचा है जिनको वह ईश्वर और नाम के विश्वासियों को विशेषतया उनके मंडल के लिए और साधारणतया जनता में प्रचार के लिए, पहुँचाना चाहता है. (यह सत्य है कि असली शान्ति, आनन्द, स्वतन्त्रता और समृद्धि आदि असली 'नाम' से प्राप्त की जाती हैं बशर्ते कि 'नाम' किसी पूर्ण और सच्चे पुरुष से, जिसको सतगुरु कहते हैं, मिला हो.)

5. किन्तु असली 'नाम' क्या है? वह लोग जिन्हें अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक कष्टों को दूर करने के लिए 'नाम' की आवश्यकता है, इस नाम से अनभिज्ञ हैं. नामधारी आचार्यों के विभिन्न सम्प्रदायों की वर्तमान शिक्षा स्पष्ट नहीं है. मैं ऐसा क्यों कहता हूँ? क्योंकि बहुत से लोगों को, जिनसे मेरा सम्पर्क हुआ है या तो अपने तईं या अपने गुरुओं और अपने मार्ग के विरुद्ध शिकायत करते हैं. अतः प्रत्येक जाति, सम्प्रदाय और पंथ के वर्तमान आचार्यों द्वारा ऐसे व्यक्तियों की भलाई के ख्याल ने इन पंक्तियों के लिखने के लिए विवश किया.

6. यदि दुख व आपत्ति-विपत्ति के पंजे में पड़ने से पहले 'नाम' ग्रहण कर लिया जाय और उसका अभ्यास किया जाय तो निस्सन्देह सब प्रकार के दुख, आपत्ति, विपत्ति आदि से बचने का एकमात्र उपाय 'नाम' है. इससे मनुष्य का पतन कदापि न हो अर्थात् वह आपत्तिग्रस्त तथा दुर्भागी न हो. यदि वास्तविक अर्थों में 'नाम' का अभ्यास किया जाय तो

किसी व्यक्ति को दुर्भाग्य के कारण कोई कष्ट प्रतीत न होगा और न आपत्तियों का उस पर प्रभाव ही पड़ सकता है.

7. 'नाम' क्या है? 'नाम' अनुभव है. दूसरे शब्दों में अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान है कि मनुष्य क्या है.

आप आपको आप पहचानो. कहा और का नेक न मानो।

(रा. स्वा. दयाल)

अपने आपको जानने के लिए विशेष आदेशों का पालन करना अनिवार्य है, जिनके पालन से यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है. इस ज्ञान के प्राप्त करने पर भी मनुष्य को उस ज्ञान पर निर्भर रहना पड़ता है. जो व्यक्ति इस ज्ञान के आश्रय रहता है केवल वही 'नाम' से लाभान्वित हो सकता है. विभिन्न धर्मों और असंख्य अनुभवी महापुरुषों ने सहस्त्रों पुस्तकें 'नाम' के विषय पर लिखी हैं जिनके पीछे पड़े हुए लोग 'नाम' को जानने को तरस रहे हैं.

8. प्रत्यक्ष रूप में प्रत्येक व्यक्ति अपने को जीवन समझता है. इस जीवन के विषय पर अनेक कथायें और कल्पनायें (थ्योरी) हैं, जिनका लेखक न खण्डन करता है और न मण्डन. उसको तो अपना निज अनुभव वर्णन करना है जो उसने परमतत्व की खोज में और निज स्वरूप के जानने में प्रयत्न करके प्राप्त किया है. जीवन केवल एक बोध शक्ति है, जिसे 4 भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) शारीरिक जीवन

(2) मानसिक जीवन

(3) आत्मिक जीवन

(4) वह जीवन जो इन तीनों जीवनों का आधार है या वह जीवन जो इन तीनों जीवनों के बोध का भान कराता है.

(1) **शारीरिक जीवन** - यह देह का बोध (Sensation) है. जीवन का यह बोध भौतिक पदार्थ, जिससे यह देह बना है, के अनुसार होगा. जलवायु और खाद्य पदार्थ जो माँ-बाप ने

गर्भ के समय खाये हों तथा वह पदार्थ, जिनको खाकर वह जीवन व्यतीत करता है, शारीरिक बोध में बहुत बड़ा कार्य करते हैं. देह के कष्ट, जिनसे लोग दुखी हैं, अनियमितता और प्रतिकूल भोजन अर्थात् प्रकाश, वायु, जल और साग सब्जी आदि के कारण से हैं, केवल 'नाम', ऐसे व्यक्ति को, जो अनियमितता और प्रतिकूल भोजन से विकसित देह में रहता है, किसी प्रकार शान्ति अथवा सुख चैन नहीं दे सकता. अतः समस्त शारीरिक कष्टों से छुटकारा पाने या उनको दूर करने का सच्चा मार्ग यह है कि ऐसे ढंग से जीवन व्यतीत करे कि जिससे उसका जीवन स्वस्थ रह सके. यह समझ या ज्ञान तथा इसका अभ्यास नाम का एक अंग है. इसके लिए मुख्य नियम यह हैं-

(अ) कम खाना - स्वाद के लिए न खाओ किन्तु जीवित रहने के लिए खाओ. खाने के लिए मत जीओ.

(ब) जीवन शक्ति (ब्रह्मचर्य) की रक्षा - किसी व्यक्ति को अपनी जीवन शक्ति को जो शरीर को स्वस्थ, नीरोग और शांतमय अवस्था में रखती है, व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए.

कोई व्यक्ति चाहे 'नाम' का सुमिरन करे अथवा गुरुओं के पास जाय और उनके आदेशानुसार अभ्यास करे किन्तु जब तक वह अपनी जीवन शक्ति की रक्षा नहीं करेगा, उसके शारीरिक कष्ट दूर नहीं होंगे.

प्राचीन काल के महापुरुषों की रचनायें, व हमारे ग्रंथ विभिन्न रूपों में इस उपरोक्त कथन का समर्थन करते हैं।

(2) **मानसिक जीवन** - संकल्प से ही भौतिक पदार्थ की उत्पत्ति होती है. मन भी उन्हीं तत्वों से बना है जिनसे कि देह बना है. अंतर केवल इतना है कि देह के बनाने वाले तत्व स्थूल पदार्थ के होते हैं और मन के बनाने वाले तत्व सूक्ष्म पदार्थ के होते हैं. जिस प्रकार स्वाद के वशीभूत अधिक खाने से शरीर की आरोग्यता नष्ट हो जाती है, ठीक उसी प्रकार मन रसिक विचारों पर, जो कामोत्तेजक हों या व्यर्थ की गपशप के हों, ध्यान करने से अपनी आरोग्यता नष्ट कर बैठता है. मन के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए संतों ने अजपा-जाप का साधन बताया है जिसका प्रयोजन कम और श्रेष्ठ बातों का सोचना है.

जो कामोत्तेजक विचारों के ध्यान में निमग्न रहता हो अथवा मानसिक व्यभिचारी हो अथवा जो अनावश्यक बातों पर मनन करता है, वह वास्तविक मानसिक शान्ति कभी प्राप्त नहीं कर सकता. हाँ, अंत में आपत्ति-विपत्ति का शिकार अवश्य होगा.

लेखक ने इस कहावत - ''जैसा बोओगे वैसा काटोगे'' का अनुभव अनेकों प्रकार से किया है और इसे सच पाया है. यहाँ बोने से अभिप्राय सोचने से है.

दूसरों से घृणा करना, दूसरों की चुगली करना और दूसरों का बुरा सोचने का वास्तविक अर्थ यही है कि उन विचारों का बीज हम अपने अंतर में बोयें और अनजान रूप से उनका फल पायें. विचार स्वयं हमारे कार्यों से अधिक शक्तिशाली है क्योंकि यह स्थूल भौतिक पदार्थ का उत्पन्न करने वाला है. अतः अनुचित विचार और मलिन व गंदी बातों के ध्यान से मनुष्य पर आपत्तियाँ आती हैं. इसलिए संतों ने निम्नलिखित नियम निर्धारित किये हैं -

इतना सोचो जिससे प्रयोजन सिद्ध हो. इतना खाओ जितने से आवश्यकता की पूर्ति हो. इतना काम करो जिससे प्रयोजन पूरा हो सके अथवा वही सोचो जो आवश्यक और लक्ष्य तक हो.

जिन्होंने नाम का आश्रय लिया है, यदि वे उपरोक्त सिद्धान्तों का पालन नहीं करते तो उनको कुछ प्राप्त नहीं होगा. वे वास्तव में अपने आपको नष्ट-भ्रष्ट कर लेंगे, क्योंकि जब नाम द्वारा उनकी वासनायें पूरी न होंगी, जो यह उनके अपने अज्ञान का कारण होगा, तो वह या तो संतों के बारे में बुरा-भला सोचेंगे या घृणित भावों से उनकी शिक्षा की शिकायत करेंगे. अन्त में विचार की फिलॉसफी के अनुसार उनके अपने विचार ही उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे.

वर्तमान समय के लोग विचार की शक्ति से नितान्त अनभिज्ञ हैं. विचार क्या है इस विषय पर लेखक दूसरे प्रकरण में संक्षिप्त रूप में वर्णन करने का प्रयत्न करेगा.

द्वितीय प्रकरण

विचार

वर्तमान विज्ञान अणुओं यानि एक प्रकार की शक्ति तक पहुँचा है जो ब्रह्माण्ड व्यापी स्थूल पदार्थ को उत्पन्न करने वाली है. अब लेखक का यह कहना है कि पाठक अपनी उत्पत्ति के विषय पर विचार करें. तुम अपनी माँ के गर्भ में प्रवेश करने से पहले अपने पिता के मस्तिष्क में वीर्य के कीटाणु थे. वह कीटाणु उस भोजन से बने जो तुम्हारे पिता ने खाया और जिससे रक्त और वीर्य बना. यह खाद्य पदार्थ पृथ्वी से प्राप्त किये गये थे. गर्मी और प्रकाश के बिना पृथ्वी खाद्य पदार्थ उत्पन्न नहीं कर सकती. सूर्य और अन्य तारागण गर्मी और प्रकाश के मूल उद्गम हैं. इस प्रकार तुम्हारा शारीरिक जीवन वास्तविक रूप से स्थूल

पदार्थ से मिला हुआ गर्मी और प्रकाश है और शारीरिक इन्द्रियों को उत्पन्न करता है. तुम्हारा मन ही तुम्हारे शरीर का रचने वाला है. इसी प्रकार ब्रह्माण्डी मन, जो ज्योति स्वरूप कहलाता है और सारी सृष्टि का रचने वाला है, स्थूल पदार्थों (पंच महाभूतों) को उत्पन्न करता है. इसलिए मनुष्य जो कुछ मन की एकाग्र अवस्था में सोचता है, चाहे वह क्रोध की सूरत में हो अथवा प्रसन्नता के रूप की दशा में हो, उसका वैसा ही प्रभाव अवश्य उत्पन्न होगा, क्योंकि विचार जो एक शक्ति है स्थूल पदार्थ में बदल जाती है. अतएव जो व्यक्ति जो कुछ बोवेगा वैसा ही काटेगा अथवा जैसा तुम सोचोगे वैसा ही बनोगे. तुमको इन बातों का भली प्रकार ज्ञाता समझकर लेखक यह आशा करता है कि तुमने मेरे मन्तव्य को समझ लिया होगा. लेखक ने पूर्णतया यह अनुभव कर लिया है कि जो कुछ हम पर या सृष्टि पर गुज़रती या पड़ती है वह हमारे अपने ही विचारों का फल है.

कोई व्यक्ति जो अपनी अंतरीय गर्मी और शक्ति को इतना विकसित कर सकता है कि ज्योतिस्वरूप की सीमा तक ले आये, तो वह अपनी इच्छानुसार स्थूल पदार्थ को बदल देने की शक्ति प्राप्त कर सकता है अर्थात् उसमें और ज्योतिस्वरूप में कोई अंतर नहीं रहता.

हमारे पूर्वज इसी प्रकार का साधन किया करते थे जिसको उन्होंने गायत्री मंत्र का नाम दिया था. संतों ने इसी को दूसरे ढंग से वर्णन किया है अर्थात् अपने आपे (अपनी सूरत) को दोनों भौंओं के मिलाप स्थान से थोड़ा ऊपर सहसदल कंवल पर एकाग्र करना है.

लेखक का निज अनुभव भी इस बात का विश्वास दिलाता है कि जो व्यक्ति अपनी गर्मी व प्रकाश को उचित स्थान पर लाकर पूर्णतया एकाग्र हो जाता है, वह जो कुछ इच्छा करेगा, उसे पूर्ण हुई पायेगा.

मनुष्य किस प्रकार की कामनायें या इच्छायें रखें, यह ऐसा प्रश्न है जो यहाँ निर्णय नहीं किया जा सकता. प्रत्येक व्यक्ति की इच्छायें दूसरी वस्तुओं के साथ बाह्य संबंध के कारण अलग-अलग हुआ करती हैं. यह अधिक श्रेष्ठ होगा कि मनुष्य किसी पूर्ण पुरुष से सम्बन्ध स्थापित किये रहे. तुमको समझाने की दृष्टि से अपने नित्यप्रति के अनुभवों में से एक उदाहरण गलत इच्छा का दिया जाता है. एक बार जबलपुर से तार विभाग के एक इन्स्पैक्टर मय अपनी स्त्री व 3 बच्चों के लेखक के पास आये. उनकी स्त्री योगाभ्यास किया करती थी. स्वास्थ्य की दृष्टि से वह दुर्बल थी और बच्चों को नियंत्रण में नहीं रख सकती थी. वह लेखक पर विश्वास रखती थी. उसने सत्संग में तीन बार इस इच्छा से यह प्रार्थना की कि उसके पति से बच्चों की देखभाल करने को कह दिया जाय, क्योंकि बच्चों की देखभाल में समय नष्ट करने से वह अपना सारा समय शाश्वत शान्ति के प्राप्त करने के लिए जो उसके जीवन का ध्येय था, चित्तवृत्ति को एकाग्र करने में लगाना अधिक श्रेष्ठ समझती थी. उसके पति के सिर पर अनेकों जिम्मेदारियाँ थीं. वह स्त्री की इच्छानुसार कार्य

करने में असमर्थ था. विचार शक्ति का ज्ञाता और प्राकृतिक नियम का अनुभवी होने के कारण लेखक ने अपने एक मित्र पं. वलीराम से कहा कि इस स्त्री के बच्चे अवश्य नष्ट हो जायेंगे. वही बात हुई कि नौ मास के अंदर उसके तीनों बच्चे काल का ग्रास बन गये. अतः इच्छा करने का यह गलत तरीका है. निश्चय ही प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की उन्नति के लिए श्रेष्ठतर और उद्देश्य तक ही सोचना चाहिए. इस उद्देश्य की पूर्ति का उचित मार्ग यह है कि यथेष्ट समय सत्संग में लगाया जाय.

तृतीय प्रकरण

आत्मिक जीवन - जीवन के बोध के अतिरिक्त जिस को लेखक ने ऊपर वर्णन किया है, एक और जीवन है जहाँ शरीर या मन का बोध नहीं है. उस जीवन में विचार नहीं रहता और वह शरीर और मन के बोध से स्वतंत्र है. जब कोई व्यक्ति शारीरिक व मानसिक इन्द्रियों का अनुभव करते-करते अभ्यस्त हो जाता है तो उसके लिए ऐसी अवस्था की अभिलाषा स्वाभाविक हो जाती है जहाँ कि उसे पूर्ण विश्राम मिले, जैसे कि दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात मनुष्य गहरी नींद का आनन्द उठाना चाहता है. जैसे मानसिक व शारीरिक कठिन परिश्रम के पश्चात एक व्यक्ति के लिए गहरी नींद की इच्छा स्वाभाविक होती है ठीक उसी प्रकार ऐसी अवस्था की खोज जहाँ कि उसे शारीरिक व मानसिक पूर्ण विश्राम मिल सके, स्वाभाविक होती है अर्थात् शारीरिक व मानसिक इन्द्रियों की पहुँच के परे जाना है जो आत्मिक ज्ञान की ओर पहला कदम है.

जब तक कोई व्यक्ति ठीक इतना कार्य नहीं करता कि वह शारीरिक व मानसिक थकान का भान न करने लगे, वह गहरी नींद का आनन्द नहीं उठा सकता. ठीक इसी प्रकार एक व्यक्ति जिसको अपने शारीरिक व मानसिक जीवन में सच्ची मानसिक व आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं होती और माया के खेल खेलते हुये पूर्णतया उकता नहीं जाता, वह अध्यात्म (रूहानियत) की जो शान्ति और आनन्द का भंडार है, जिज्ञासा नहीं कर सकता.

इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि कोई व्यक्ति गलत धारणा में पड़कर आत्मिक मार्ग पर चलने का प्रयत्न न करे, क्योंकि उसके सारे प्रयत्न उस समय तक व्यर्थ सिद्ध होंगे जब तक उसने तथ्य, असलियत अथवा अध्यात्म की प्राप्ति की प्रारम्भिक सीढ़ियों को पार न कर लिया हो. पुस्तकों की सहायता से अध्यात्म (रूहानियत) या सत मार्ग की खोज या

प्राप्ति की आशा करना निरी मूर्खता है. चूँकि पाठक लेखक के भावों को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते, अतः प्रत्येक व्यक्ति को प्रारम्भ में इस मार्ग में प्रवेश करने से पहले देह, मन और आत्मा का यथेष्ठ अनुभव प्राप्त कर लेना चाहिए अन्यथा ऐसे पाठक भ्रम में पड़ जाते हैं और इस तरह कष्ट भोगते हैं.

हमारे पूर्वजों ने अध्यात्म में पूर्णता प्राप्त करने पर मानव जीवन को चार भागों में बाँटा है, जो आश्रम कहलाते हैं - अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास. प्रत्यक्ष में मुख्य विचार यह था कि पहला आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य को सफलतापूर्वक पूर्ण करने पर जीवन के अन्य आश्रमों में मनुष्य कदापि असफल न होगा. स्पष्ट रूप से कहने के लिए तथा मुख्य प्रसंग को छोड़कर यह संकेत किया जाता है कि वर्तमान संतान मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर रही, इसलिए बहुत से युवक भक्त दिखाई दे रहे हैं.

कुछ लोगों का विचार है कि आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हुए उनको सब प्रकार की सांसारिक सुविधाएँ प्राप्त हो जाएँगी, मगर ये उनकी बड़ी भारी भूल है. यदि कोई सांसरिक उन्नति का इच्छुक है, तब उसको यह सीखना चाहिए कि सोचने, काम करने और जीवन व्यतीत करने के उचित नियम क्या हैं. अध्यात्म संबंधी कोई शिक्षा ऐसे व्यक्ति को कोई सांसारिक शान्ति या लाभ नहीं पहुँचा सकती, जब तक उसको इस बात का सच्चा ज्ञान न हो कि अपने आप को अर्थात् अपने देह, मन और विचार को किस प्रकार संयम में करें. इसके लिए किसी पूर्ण पुरुष के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता है.

जिस तरह एक विद्यार्थी को उसके विद्यार्थी जीवन में उसकी सफलता के लिए एक पूर्ण गुरु की आवश्यकता है, केवल पुस्तकें सहायता नहीं कर सकतीं, ठीक इसी प्रकार एक आत्मज्ञान के विद्यार्थी के लिए जब तक उसे असली ज्ञान, नाम या सार अनुभव प्राप्त हो, एक पूर्ण आध्यात्मिक गुरु के पथ-प्रदर्शन की अत्यंत आवश्यकता है. लेखक यहाँ बहुत सी युक्तियाँ वर्णन कर सकता था, किन्तु इस बात का भय है कि वे युक्तियाँ पाठकों को पथभ्रष्ट न कर दें. चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए उपाय भी भिन्न-भिन्न होने चाहिएँ. इसलिए संतमत में ठीक-ठीक पथ-प्रदर्शन के लिए जीवित गुरुओं पर जोर दिया जाता है.

चतुर्थ जीवन - यह जीवन की वह अवस्था है, जहाँ ऊपर वर्णन किये गये तीनों जीवन, असली जीवन के साथ जो तीनों जीवनों के भान-बोध का साक्षी है, एक नियमित ढंग में तथा अनुरूप अवस्था में काम करते हैं ताकि इनको शान्ति की अवस्था में लाये, जहाँ कोई कष्ट है न भ्रम.

ऊपर की सूक्ष्म व्याख्या को दृष्टि में रखकर लेखक आप सबसे हार्दिक रूप से चाहता है कि मानव जाति के कष्टों और विपत्तियों को दूर करने के लिए कबीर, नानक, राधास्वामी दयाल और दाता दयाल तथा अन्य संतों की सच्ची शिक्षा का संसार में प्रचार करें.

उस शिक्षा की रूपरेखा इस प्रकार है -

(1) मानसिक ब्रह्मचर्य - मन से या विचारों से ब्रह्मचर्य की रक्षा मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है. यदि उसने इसका पालन नहीं किया तो उसको कहीं से किसी प्रकार भी सहायता नहीं मिल सकती. उसको सच्ची मानसिक शांति भी किसी प्रकार नहीं मिल सकती. आत्मज्ञान का तो कहना ही क्या है.

(2) कम खाना - यह भी एक महत्व की बात है. चूँकि उचित पाचन से देह, मन और बुद्धि समावस्था में रहते हैं इसलिए यह भी आवश्यक है कि भोजन इतना खाया जाय जो जीवन को स्थित रखने को आवश्यक हो.

(3) कम सोचना - प्रत्येक व्यक्ति को कम और अपने उद्देश्य की पूर्ति तक सोचना चाहिए और उसके विचार सर्वदा शुभ और आशावादी हों जो लगभग सभी धर्मों का मुख्य सिद्धान्त है.

(4) कम बोलना - उचित सोच-विचार और ध्यान स्वयमेव मनुष्य को गम्भीर रखते हैं, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति को दुर्वचनों और गपशप आदि से बचना चाहिए जो मनुष्य की मानसिक शान्ति पर एक भयंकर मोर्चा है.

(5) काम अथवा व्यवसाय - किसी को बेकार या निरुउद्यमी नहीं रहना चाहिए. काम में लगे रहने का सदा प्रयत्न करो लेकिन काम सार्थक हो.

(6) ज्ञान - प्रत्येक व्यक्ति को निज आत्म संशोधन करते हुये प्रकृति के नियमों की सदा ठीक-ठीक और यथार्थ समझ रखनी चाहिए.

अध्यात्म (रूहानियत) - के जिज्ञासुओं को प्रारम्भिक अवस्थाओं में उपरोक्त सिद्धांतों को ग्रहण करना चाहिए. अन्यथा वे सफलता के द्वार तक नहीं पहुँच सकते.

संभव है कुछ पाठक अभ्यास की अवस्थाओं के सम्बन्ध में, जिनको संतों ने अपनी पुस्तकों या शिक्षाओं में वर्णन किया है, भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न और संशय उठायें. इस विषय पर लेखक बिल्कुल स्पष्ट कह देना चाहता है क्योंकि उसे यह प्रतीत होता है कि उसने अपने कृपालु गुरु की छत्रछाया में अपने आप में सच्चा रहकर सच्चाई या असलियत का अनुभव कर लिया है. जीवन का स्पष्ट किन्तु संक्षेप में निष्कर्ष या सार देने के अभिप्राय से

कबीर, राधास्वामी, नानक जैसे पूर्ण और उच्च आत्माओं ने जीवन के चार भाग किये हैं जो देह, मन, आत्मा और चौथा पद (सारतत्व) हैं. देह को छः भागों में बाँटा गया है अर्थात गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, कंठ और भ्रूमध्य. ये 6 चक्र कहलाते हैं जिन से शारीरिक चेतना झरती है. इन सब चक्रों के सम्मिलित दशा में कार्य करने का परिणाम ही जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति है.

मन - (1) सोच विचार (मन की जाग्रत अवस्था)

(2) एक विषय पर एकाग्रता - शरीर का आभास न रहना (मन की स्वप्नावस्था)

(3) गहरा ध्यान - (शरीर और मन से अचेतन्यता) अर्थात विषय का बोध न रहना ही मन की गहरी नींद है उन्होंने जीवन को 6 भागों में बाँटा है जो वास्तव में मन के ही खेल के क्षेत्र हैं.

आध्यात्मिक लोक - यह वह लोक है जहाँ देह और मन की चेतन्यता या बोधन शक्ति विलीन हो जाती है किन्तु एक जीवन फिर भी रहता है. इस जीवन के अस्तित्व के प्रगट करने के लिए विभिन्न स्थान हैं जिन्हें सत, अलख, अनामी आदि कहा गया है. चौथा जीवन या चौथी अवस्था बिना जीवन का जीवन है. वह असली अस्तित्व है ये वर्णन निज अनुभव के आधार पर है जो ठीक है. जब आत्मा अपनी आत्मा में किसी दशा का आनन्द लेती है तो वह आप ही आप उन लोकों या अवस्थाओं से सम्बन्ध रखती है जो इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं.

किन्तु कोई व्यक्ति इन सब अवस्थाओं को उस समय तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि मन के निरोध करने में पूर्ण दक्ष न हो और जीवन व्यतीत करने के भेद को पूरी तरह न समझता हो. हाँ, यह पूर्णता धीरे-धीरे और सीढ़ी दर सीढी प्राप्त की जा सकती है.

वे लोग, जो मानसिक ब्रह्मचर्य, कम सोचना (अजपा-जाप) आदि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, के सिद्धान्तों के पालन करने की प्रारम्भिक क्रियाओं को पार नहीं करते और आत्मिक लोक में प्रवेश करने का प्रयत्न करते हैं अथवा अपने निज अस्तित्व को आत्मा महसूस करने का प्रयत्न करते हैं, कदापि सफल नहीं हो सकते. वे पहले से भी अधिक गिर जायेंगे क्योंकि इस परिश्रम से उनके स्वास्थ्य और मस्तिष्क की दशा बिगड़ जाएगी और उनके पागल होने का भी भय है.

कोई भी व्यक्ति उस समय तक आत्मा के लोक में प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वह अंतरीय शब्द से अपना सम्बन्ध न जोड़े. किसी व्यक्ति के लिए अंतरीय शब्द का पकड़ना उसी समय संभव है जब वह इच्छा रहित हो जाय. एक व्यक्ति उस समय तक

इच्छा रहित नहीं हो सकता जब तक वह स्थूल और सूक्ष्म तत्वों से, जिनसे उसका शरीर बना है, ऊपर न जाय. इसलिए मैं सहानुभूति की दृष्टि से समस्त सम्बन्धित लोगों को चेतावनी देता हूँ कि बिना जिन्दा पूर्ण गुरु के पथ-प्रदर्शन के, जो अधिकारियों को उचित और अनुकूल आदेश दे सकता है, इस मार्ग में पग न बढ़ायें.

लेकिन दुख यह है कि वर्तमान गुरुओं की अधिक संख्या स्वयं असलियत से अनभिज्ञ है. वे पुस्तकों के आधार पर बिना निज अनुभव के उपदेश देते हैं. उनका प्रयोजन शिष्यों की संख्या बढ़ाना और संत्संगों के लिए फंड जमा करना है.

(13) लोगों में सतगुरु के सम्ब्न्ध में एक गलत धारणा है. अंतरीय इष्ट, जिसको एक आदमी बनाता है, उसके विचारों और युक्तियों के अनुसार उसका पथ-प्रदर्शन करता है जिनको उसने पुस्तकों से प्राप्त किया है. इसलिए जिंदा पूर्ण पुरुष ही है जो ठीक आदेश दे सकता है और उसके आदेशों के अनुसार चलने से मनुष्य का आंतरिक आत्मा जाग्रत हो जायेगा.

(14) जो लोग पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर अथवा अपूर्ण गुरु के आदेश या पथ-प्रदर्शन में आत्मिक अवस्था की प्राप्ति के लिए निष्काम या इच्छा रहित बनने की इच्छा करते हैं उनको अधिकतर असफलता का मुँह देखना पड़ता है. प्रकृति के नियमानुसार उनकी निष्काम होने की इच्छा उनको आर्थिक रूप से तथा सांसरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित रखेगी जिनके बिना वे असंतुष्ट रहेंगे. ऐसी दशा में उनकी दशा धोबी के कुत्ते जैसी होगी.

इस संबंध में एक उदाहरण देता हूँ कि एक व्यापारी अपने व्यापार की पिछले दो सालों में गिरावट के कारण ज्ञात करने के लिये लेखक के पास आया. लेखक ने उत्तर दिया - 'जो कुछ तुम अब तक बोते रहे हो उसका फल मिल रहा है.

वह इस बात को न समझ सका. तब उससे कहा कि अपनी विशेष इच्छाओं को बताओ जो तुम्हारे मन में रही हों. उसका उत्तर यह था कि 12 वर्ष हुए उसकी स्त्री 7 लड़कियाँ छोड़कर मर गई. उन लड़कियों में से 3 मर गईं और चार का विवाह कर दिया गया. इसके अतिरिक्त उसने कहा कि अपनी स्त्री की मृत्यु के पश्चात् वह सर्वशक्तिमान ईश्वर से यही प्रार्थना करता रहा कि लड़कियों के विवाह के पश्चात् वह अपना जीवन भक्ति में व्यतीत करे और दुनिया से कोई सम्बन्ध न रखे अथवा उपराम हो जाय. ईश्वर ने बड़ी दया की कि मेरी प्रार्थनायें पूरी हुईं, क्योंकि सब लड़कियों का विवाह बड़े घराने में हो गया. लेखक हँस पड़ा और बोला, ''फिर मैं ठीक कहता हूँ. चूँकि तुम अपनी लड़कियों के विवाह करने के पश्चात् सांसरिक सम्बन्धों के त्याग का संकल्प करते रहे हो. अतः तुम अब अपने व्यापार से लाभ नहीं उठा सकते.''

(15) कुछ लोगों का विश्वास है कि मनुष्य ब्रह्म है और उनका इसी कल्पना का ध्यान ही कि वह स्वयं ब्रह्म है 'नाम' है. लेकिन यहाँ लेखक साहसपूर्वक कहता है कि इस बात में लेशमात्र सच्चाई नहीं है, किन्तु यह मनुष्य के मस्तिष्क या मन की एक अवस्था है.

किसी तरह लेखक इस विचार से सहमत है कि जहाँ तक विचार की फिलॉसफी (मनोविज्ञान) का सम्बन्ध है, यह ख्याल कि मनुष्य ब्रह्म है निस्सन्देह उच्च है और मनुष्य को धैर्य और शांति प्रदान करता है, किन्तु यह क्षणिक है न कि स्थायी. वास्तव में यह एक प्रकार की सनक है. मनुष्य को पदार्थों को ऐसा ही समझना चाहिए जैसे कि वे वास्तविक रूप से हैं. थोड़ा सोचो कि जिस कारण से मनुष्य यह विश्वास करता है कि वह 'जीव या ब्रह्म' है, एक विचार ही है और विचार केवल पदार्थ होने के कारण परिवर्तनशील है. अतः वह वास्तविक 'नाम' नहीं हो सकता जो जीवन की समस्त समस्याओं को हल कर सकता हो. किसी विशेष ख्याल, विचार या संकल्प की चरम सीमा में जाना अवश्यमेव मन का एक रोग है.

(16) अपने आपे (निजस्वरूप) के असली ज्ञान की प्राप्ति साथ ही प्रकृति के नियमों की सच्ची समझ और नित्य शाश्वत शान्ति के सच्चे मार्ग की जानकारी ही असली 'नाम' है. धार्मिक पुस्तकों की शिक्षा से जो प्रभाव लेखक पर पड़े, इन प्रभावों के अधीन लेखक को जीवन का मुख्य भाग व्यतीत करना पड़ा, किन्तु सौभाग्य से सत्पुरुष महर्षि शिव व्रतलाल जी महाराज की संगत ने लेखक को निजस्वरूप (आत्मज्ञान) का तथा उस अवस्था से लौटने का अनुभव कराया. उस अनुभव के आधार पर जो कि नित्यप्रति के तजुर्बों के कारण पूर्ण हो चुका है, लेखक निष्पक्षभाव से अपने विचार प्रगट करता है.

(17) एक ही तत्व सर्वत्र व्यापक है और जिसके अपने ही चार कोष या लोक हैं - शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और चौथा सार तत्व हैं. प्रत्येक लोक का खेल या कार्य अथवा स्वयं संचालित गति या तो स्थूल पदार्थ के या सूक्ष्म या कारण पदार्थ के विभिन्न रूप वाले शरीर बनाती है और इस बनावट से एक प्रकार की चेतना या बोध उत्पन्न होता है जिसको जीवन कहते हैं. वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक होता है. जब इन शरीरों में से किसी शरीर के अंग नष्ट हो जाते हैं अथवा नाकारा हो जाते हैं, तो उस शरीर का जीवन भी नाश हो जाता है और उस शरीर के वही अंग या तो दूसरे शरीरों से मिल जाते हैं अथवा दूसरे शरीर बना लेते हैं.

संसार अपने समस्त अंगों सहित प्रकृति या सर्वशक्तिमान ईश्वर का एक खेल है. इस समस्त अस्तित्व (सत्ता) के सार तत्व, अनन्तता या उद्गम का न अनुमान किया जा सकता है और न बोध. न कोई उसे देख सकता है, न समझ सकता है न महसूस कर सकता है. मनुष्य की इन्द्रियाँ जो स्थूल, सूक्ष्म और आत्मिक शरीरों के कृत्यों का परिणाम हैं, कारण

पदार्थ या आत्मिक शरीर के आगे नहीं जा सकतीं, इसलिये किसी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि वह अनन्त (असलियत) क्या है. वह जो है सो है अथवा मानसिक और आत्मिक दृष्टि से कहने के लिये एक परम आश्चर्यजनक दशा है.

(18) लेखक को इस बात पर संकोच है कि भिन्न-भिन्न इष्ट वाले वर्तमान भक्त, ग़लत टीका टिप्पणी करेंगे मगर इन थोड़े से पृष्ठों में सारवस्तु का बोध कराना कठिन है किन्तु मेरे निज अनुभव के कुछ उदाहरण मेरे मन्तव्य को जिसे मैं बतलाना चाहता हूँ स्पष्ट कर देंगे.

मेरे एक मित्र ने अपने 18 वर्षीय पुत्र की भक्तिभाव के स्वभाव की और मंदिरों में बैठकर पूजा करने की प्रशंसा की. यह सुनकर मैंने आह भरी और सहानुभूति के साथ कहा कि हे मित्र! तुम्हारा पुत्र अपने आचरण को भ्रष्ट कर रहा है. मेरे मित्र ने मुझे उन्मत्त समझा और कहा - ''पंडित जी! आप ऐसा किस आधार पर कहते हैं?'' मैंने बड़ा जोर देते हुए उत्तर दिया - 'प्रकृति के नियमों का ज्ञाता होते हुए मैं अपनी राय के बदलने में असमर्थ हूँ. कृपया अपने घर जाइये और अपने बाल-बच्चों में यह चर्चा कर दीजिये कि मैं एक योगी हूँ और दूसरों की कामनाओं को पूरी कर सकता हूँ. चूंकि मेरे कथन की सत्यता को जानने के लिए वह उत्सुक थे, अतः वे घर गये और वह चर्चा कर दी. अढ़ाई मास के पश्चात् मेरे मित्र का वह लड़का मेरे पास आया और बोला - ''ऐ योगिराज! एक वर्ष से एक दूसरी जाति की लड़की से मेरी गहरी प्रीति हो गई है, किन्तु परिवार की प्रतिष्ठा और उसको खुल्लमखुल्ला प्राप्त करने में मेरी असमर्थता मेरे रास्ते में कठिनाइयाँ पैदा कर रही हैं. कृपा करके मेरी सहायता कीजिये।'' मैंने परिस्थितियों के अनुसार आदेश और उपदेश देकर भेज दिया. उसके पिता को बुलाकर सारी परिस्थिति बताई गई जिससे कि वह अनभिज्ञ था. इसके पश्चात् उसने जाँच पड़ताल की और बात ठीक पाई गई तथा वह मेरे विचारों से सहमत हुआ.

मुझे एक बार ऐसी जगह जाने का अवसर मिला जहाँ बहुत से सत्संगी एकत्रित थे. उनमें एक 22 वर्षीय नवयुवक था, जिसकी भक्तिभाव के कारण सब सत्संगी उसका बड़ा सम्मान करते थे. उनमें से बहुत से सत्संगी मेरा भी लिहाज़ रखते थे. इसलिये लेखक ने इस भक्त के हाथ को प्रेम और हार्दिक करुणा भाव से पकड़ कर कहा - ''भक्तराज! तुमको इस माया आदि से बचाने के लिए प्रकृति ने मुझे भेजा है.'' वह बहुत प्रसन्न हुआ. जब हम अकेले रह गए तो मैंने उससे कहा - ''मेरे बच्चे! हस्तमैथुन के स्वभाव को छोड़ दो.'' वह भक्त बड़ा चकित हुआ और हर प्रकार से मेरे उपदेश पर चलने का उसने प्रण किया.

(19) भिन्न - भिन्न प्रकार के लोगों की ईश्वर या अपने इष्टों की भक्ति करने का वर्तमान ढंग गलत प्रचिलित है. मनुष्य क्यों भक्ति करता है इसके कारण निम्नलिखित हैं:-

(1) कमजोर जीवनशक्ति के होने से, जो विभिन्न कारणों से हो सकती है,

(2) इष्ट के द्वारा वासनाओं की पूर्ति की लालसा से,

(3) ईश की खोज के लिये जिसका विचार उसको या तो धार्मिक शिक्षा से मिला हो या वह स्वयं संसार के विषय में जानना चाहता हो. उपरोक्त कारणों से बने हुये भक्तों के लिये नाम ही एकमात्र उपाय है.

1. उपरोक्त नम्बर (1) में वर्णित लोगों को उस आचरण को त्याग कर देना चाहिए जिससे उनकी जीवनशक्ति नष्ट होती है.

2. उपरोक्त नम्बर (2) में लोगों को ऊपर बताये गये आदेशों के साथ-साथ यह जान लेना चाहिए कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये किस तरह सोचें, क्या सोचें और कब सोचें.

3. उपरोक्त नम्बर (3) के लोग नम्बर 1 व 2 में वर्णित आदेशों के साथ-साथ किसी पूर्ण पुरुष के वचनों और सत्संग में मन लगाना चाहिये ताकि उन पर चल सकें.

केवल यह 'नाम' (जीवन व्यतीत करने का सही मार्ग) ही मनुष्य जाति को लाभकारी हो सकता है.

(20) उन लोगों के लिये, जो मुख्य-मुख्य बातों में कमजोर हैं, उनके लिये इस 'नाम' की प्राप्ति और साधन करने के लिये दूसरा मार्ग है. वह है अपने तईं सच्चा रह कर उस अनन्त (परमतत्व) की पूर्ण रूपेण शरणागत होना, जो मनुष्य से अलग-थलग नहीं है. यदि मनुष्य अपने आप में सच्चा बने तो इस ढँग या मार्ग से मनुष्य को सुख शांति, धन सम्पत्ति, स्वास्थ्य तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति हो जायेगी, क्योंकि सच्चा बनने और अनंत (परमतत्व) का शरणागत होने पर जो उसका अपना स्वरूप है, वह सब प्रकार के भौतिक पदार्थ के मंडलों में स्वयमेव प्रवेश करेगा जिन पदार्थों से कि उसका स्थूल, मानसिक और आत्मिक शरीर बना है. इस प्रकार विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार उसे अनजाने सब कुछ मिल जायेगा जो उसे सुखी और शांतिमय रख सके.

यह अंतिम मार्ग 'नाम' की प्राप्ति का अचूक उपाय है. मानव जाति के शारीरिक व मानसिक कष्टों का विशेषतया उन लोगों का, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से गिरती हुई दशा में हैं, इस मार्ग को लेखक जोरदार शब्दों में अचूक इलाज घोषित करता है.

(21) संभव है आजकल के आधुनिक विज्ञान के ज्ञाता लोग मेरे उपरोक्त कथन पर हँसी उड़ावें, लेकिन लेखक उन्हें सारतत्व से अनभिज्ञ समझता हुआ हृदय से प्रार्थी है कि वे अपनी अंतिम राय देने से पहले लेखक की बातों को सुन लें.

जैसी कि वर्तमान विज्ञान वेत्ताओं ने खोज की है कि स्थूल पदार्थ का भंडार एक प्रकार की शक्ति है जो अणुओं से उत्पन्न होती है और प्रत्येक अणु, विद्युत अणुओं से भरपूर है.

इसी सिद्धांत पर लेखक का कहना है कि विचार भी एक तत्व है जो स्थूल पदार्थ का रचयिता और सहायक है. केवल इसके समर्थन के लिए लेखक इतना और कहता है कि यदि विचार में कोई ठोसपना न हो तो मनुष्य अपनी कल्पना में स्थूल पदार्थ का रूप या फोटो कैसे बन सकता है. यदि विचार में कोई द्रव या बहने वाला पदार्थ न हो तो अपनी कल्पना में कैसे कोई किसी शक्ल को एक-दूसरे में बदल सकता है. यदि विचार में वायु (गैस) का-सा पदार्थ न हो तो विचार कैसे ऊँचा जा सकता या गतिमान हो सकता है. यदि ख्याल में कोई शक्ति न हो तो वह दूसरों पर कैसे प्रभाव डाल सकता है.

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि स्थूल विचार ही पदार्थ का पैदा करने वाला और सहायक है तथापि प्रतिदिन के जीवन के तजुर्बों के एक उदाहरण से प्रत्येक को इसकी सत्यता का विश्वास हो जायेगा. स्वप्नावस्था में कोई व्यक्ति विचार से स्त्रीभोग का आनन्द लेता है जिसका परिणाम यह होता है कि उसका वीर्य जो जीवन मूल है, निकल पड़ता है.

जब स्वप्न की दशा में विचार या ध्यान में इतनी शक्ति है तो इस बात की सत्यता से कोई कैसे इंकार कर सकता है कि विचार अपार शक्तिशाली है और स्थूल पदार्थ का उत्पत्तिकर्ता है. अंतर केवल इतना है कि विचार (मन) सूक्ष्म पदार्थ से बना है और शरीर स्थूल पदार्थ से.

अब समझिये कि संसार में बिजली भिन्न-भिन्न तरीकों और शक्लों में काम आती है वह निम्नलिखित ढंगों से यानि

(1) दो भिन्न पदार्थों को तेजाब में रखने से,

(2) दो वस्तुओं की रगड़ से और

(3) पानी के गिराव से.

इसी प्रकार मन जब किसी काम के होने की इच्छा रखता हुआ एकाग्रता की अवस्था में पहुँचता है तो संकल्पशक्ति ऐसी मानसिक लहरें उत्पन्न करती है कि जब वे इस ब्रह्माण्ड में लहरों के केन्द्र से मिल जाती हैं तो ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती हैं जो उक्त मनुष्य की इच्छा के अनुसार स्थूल पदार्थ को काम करने या हरकत करने पर विवश करती है.

यही दशा आत्मिक लहरों की है किन्तु इस विषय पर चर्चा करना यहाँ उपयुक्त न होगा.

(22) अब किसी व्यक्ति का उदाहरण लो जो 'अनन्त' की पूर्ण शरणागति का अभ्यास करता है, जो सारी रचना का उत्पन्न करने वाला और सर्वव्यापक है. ऐसे व्यक्ति को आप से आप देह, मन और आत्मा के पदार्थ में से होकर जाना पड़ेगा. चूँकि वह शान्ति आदि के प्राप्त करने के संकल्प से शरणागत होता है, इसलिए मानसिक और आत्मिक लहरें जो इसके शरीर से निकलती हैं, पूर्ण शरणागत होने की दशा में प्रकृति के नियम के अनुसार आप ही आप ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देगी जो उसको सुखी और शांतिमय बना दें.

ऊपर की व्याख्या अधिक स्पष्ट नहीं है किन्तु वर्तमान विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर लोगों को निश्चय कराने को यथेष्ट है.

(23) अब फिर लेखक आपको यह बताना चाहता है कि दोनों भौंओं के मिलाप के स्थान से थोड़ा ऊपर एकाग्र किया गया संकल्प भारी सम्भावित शक्ति से ठीक उसी प्रकार काम करता है जैसे कि बेतार के तार में बिजली काम करती है. बेतार के तार में दो लच्छे होते हैं (1) प्रिलिमिनरी (2) सैकेंडरी. जब वोल्टेज किसी बैटरी से प्रिलिमिनरी कॉयल से होकर सैकेंडरी कॉयल को गुज़रता है तो वह सैकेंडरी कॉयल के अनुपात से बढ़ जाती है अर्थात यदि सैकेंडरी कॉयल में 100 लच्छे (कॉयल) हो और प्रिलिमिनरी कॉयल में 10 हों तो वोल्टेज, जो सैकेंडरी कॉयल में से होकर वायुमंडल में जायेगा, बैटरी से आने वाली मूल वोल्टेज से दस गुना होगी, इसी प्रकार विचार या संकल्प की शक्ति जो ऊपर बताये हुये स्थान पर एकाग्र की जाय तो अत्यंत शक्तिशाली होगी. इसलिये वेदों और संतों ने हम को शुभसंकल्प रखने और सदा आशावादी रहने का उपदेश दिया है अथवा चेतावनी दी है. किन्तु यह महसूस करके दुख होता है कि वर्तमान संतति नहीं जानती कि क्या सोचें, कैसे सोचें और कब सोचें.

चतुर्थ प्रकरण

मुक्ति

(24) मुख्य भावना, जिसके प्रभाव से धार्मिक जगत के लोग ईश्वर की पूजा करते हैं अथवा जप आदि करने का प्रयत्न करते हैं, मोक्ष प्राप्त करना है अर्थात् आवगवन से छुटकारा पाना है.

लेखक भी पहले इसी गिनती में था लेकिन अब वह अपने आपको आवागवन से मुक्त समझता है. अपने निज अन्तर्ज्ञान के आधार पर लेखक उन सबको जो आवागवन के भ्रम में पड़े हुये हैं यह सम्मति देने का साहस करता है कि किसी प्रकार की पूजा, जप, तप उस अवस्था तक नहीं पहुँचा सकते जब वे अपने आपको जीवन-मरण से मुक्त समझें.

जब से मनुष्य में एकाग्रता आती है. तप से केवल इच्छा शक्ति बढ़ती है. वह केवल निज आत्मज्ञान और साथ ही ब्रह्माण्ड व्यापी कानून का पूर्ण अनुभव ही है जो मनुष्य को भान कराता है कि उसने मोक्ष प्राप्त कर लिया है. लेखक की दशा भी यही है.

जन्म-मरण और मोक्ष का विचार उसी व्यक्ति को सताता है जिसको अपने स्वरूप और प्रकृति के कानून का पूर्ण ज्ञान नहीं है और यह दशा उस समय तक रहती है जब तक उसे सच्चा ज्ञान जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, प्राप्त नहीं होता.

लेखक, सारज्ञान के आधार पर, जो उसने पूर्ण पुरूष (दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन एम.ए.) के पथ-प्रदर्शन में प्राप्त किया है, अपने आपको एक बोधशक्ति समझता है जो प्रकृति के (अनन्त) उत्पन्न किये हुये शारीरिक, मानसिक और आत्मिक देहों की मिलौनी और बनावट के कारण मौजूद है. इस तरह उसके लिए कोई जन्म-मरण या आवागमन शेष नहीं रहा.

वह अनन्त, अकाल, दयाल या सारतत्व एक है और अनादि है. भौतिक, मानसिक और आत्मिक शरीर प्राकृतिक व्यवहार में उत्पन्न होते और नाश होते रहते है. लेखक अपने अस्तित्व को क्षण भंगुर समझता है. वह अपना कर्तव्य प्रकृति के नियम के अनुसार करता रहता है. अफसोस! इसके आगे कुछ नहीं कहा जा सकता.

अंत में प्रकृति के नियमानुसार लेखक का कहना है कि सत्गुरु (सत्ज्ञान) ही मनुष्य जाति को हर प्रकार के भ्रम, आपत्ति और विपत्तियों से छुटकारा या मुक्ति दिलाने वाला है और सत्ज्ञान या 'नाम' की प्राप्ति केवल किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग से हो सकती है, जिसके वचन ही कानून हैं और जो पतित जीवों का उद्धारक और मोक्ष दाता है.

कैसे .....
गुरु के मैं गुन गाऊँ.
जग की आस फँद सब काटे, ऐसी दया पर बलि बलि जाऊँ
कैसे .....
विपत पड़ी रक्षा गुरु पाई, अब क्यों दूजा देव मनाऊँ
कैसे.....
नाम दान दे किया निहाला, अब नहीं जग की आस बढ़ाऊँ

कैसे .....

पकड़ी बाँह दया से मेरी, चरण कमल लग नित लिपटाऊँ

कैसे .....

सतगुरु दया करो अब ऐसी, तुम्हरी दया पार भव जाऊँ

कैसे .....